प्रथम प्रकरण : काव्य-शिल्प की अवधारणा

सकल संसार की सर्जना किसी अलक्ष्य-अज्ञात परमसत्ता की कामना का ही परिणाम है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की उदग्र भावना ने जब परमसत्ता के मन को विचलित किया, तब उसके द्वारा संसार की सृष्टि हुई। जैसे वह (परमतत्व) अकेले रमण नहीं कर सका, उसने भी किसी दूसरे के अस्तित्व की कामना की,[1] मनुष्य के मन में भी आत्माभिव्यक्ति की आकुलता अन्तर्निहित थी। वैसे ही इसी आकुलता-व्याकुलता के परिणाम स्वरूप ही काव्य का प्रादुर्भाव हुआ।

सृष्टि और काव्य की संर्जना के मूल में लगभग एक-जैसा भाव समाहित है, इसीलिए काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द के समान तथा कवि को 'स्वयंभू' माना गया है।[2] 'अग्निपुराण' में वेदव्यास लिखते हैं कि काव्य के अपार संसार में कवि का ही

---

1 स वे नैव रेमे तस्मोदेकाकी न रमते द्वितीय मेच्छत्। - बृहदारण्यकोपनिषद, 1/4/3

2 कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू। ईसावास्योपनिषद, 8

एकाधिपत्य होता है। उसे यह संसार (काव्य का) जैसा रुचता-लगता है, उसमें वैसा ही परिवर्तन कर देता है।[3]

सर्जना के अन्तर्गत, रचयिता व्यक्ति की कामना मूलतः आत्माभिव्यक्ति की होती है। वह अनुभूति-तत्व आस-पास की सृष्टि से सँजोता है और फिर उसे अभिव्यक्ति में परिणत करता है। इस सब में उसका आत्म-तत्व निरन्तर सक्रिय रहता है। रचनाकार के आत्मतत्व की यही सक्रियता भावतत्व और विचार-तत्व के नाना आयामों को उन्मिषित करती है। किसी भी रचना में अन्तर्हित भावतत्व और विचारतत्व यदि काव्यात्मा की प्रतीति कराते हैं तो उसकी अभिव्यक्ति- व्यक्ति शिल्प के सौन्दर्य का भावन कराती है। इस प्रकार, रचनाकार भावों, विचारों एवं अनुभूतियों को अन्तर्लोक में ही परिपक्वता प्रदान कर अपनी प्रकृति-प्रदत्त विशिष्ट प्रतिभा (जो कि काव्य कामूल हेतु भी है[4]) के द्वारा उसे रचना-रूप में प्रस्तुत करता है। जिसका मूल लक्ष्य समाज को सत्य, शिव और सौन्दर्य-समन्वित संदृष्टि प्रदान करना हैं। वास्तव में यही साहित्य का मूल मनोरथ भी है।

---

[3] अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः। यथास्मै रोचते विश्वं ततेदं परिवर्तते॥ - अग्निपुराण, 339/ 10

[4] प्रतिभास्य हेतुः। - काव्यानुशासनम्, श्लोक – 4

यहाँ पर यह तथ्य इंगित कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि काव्य और साहित्य में जिन समस्त साहित्यिक विधाओं के लिए हम 'काव्य' शब्द का व्यवहार करते थे, उन्हीं समस्त (और भी कई अधुनातन) साहित्यिक विधाओं को अब हम साहित्य के अन्तर्गत अंगीकार करते हैं। अभिधानगत इस परिवर्तन का कारण यह है कि पहले काव्य अपने व्यापक अर्थ में समूचे रसात्मक वांग्मय का बोध कराता था, जबकि आज काव्य की परिधि संकुचित हो गयी है और काव्य केवल पद्यात्मक रचना के रूप में रूढ़ हो गया। अस्तु, साहित्य को समस्त साहित्यिक रूपों का अंगीरूप तथा काव्य को उसका अंगविशेष माना जाता है।

(1) काव्य: अर्थ और परिभाषा

सामान्य रूप से, कवि-कर्म अथवा कवि-रचना को ही काव्य की संज्ञा प्राप्त हैं। कवि-कर्म अथवा कवि-रचना कहने और भावन करने में जितना सुगम प्रतीत होता है, उसका विश्लेषण उतना ही अगम्य है; क्योंकि काव्य अन्तरीण अनुभूतियों से आन्दोलित होता है और यह अनुभूतियाँ अशरीरी और सूक्ष्म होती हैं। इसी सूक्ष्मता के कारण काव्य (जिसमें अनुभूतियों का पल्लवन होता है) को परिभाषित करना बड़ा दुरूह रहा है; फिर भी भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने काव्य को स्वरूपित करने का प्रयास

किया है। आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्'[5] कहकर काव्य को परिभाषित किया है; जिसका अर्थ हुआ, रसात्मक वाक्य कविता है। रस-निष्पत्ति के लिए आचार्य भरत ने रससूत्र दिया है। उस सूत्र का निर्वाह प्रत्येक प्रकार की कविता में विविधता होना सम्भव नहीं। उदाहरण के लिए कबीर की साखियों अथवा बिहारी के प्रत्येक दोहे में यह तथ्य देखा जा सकता है। अतः रस का अर्थ है – आनन्द। रस साधारण सुख-दुःख से भिन्न है, इनसे परे है। सुख या दुःख शरीर-सापेक्ष हैं। प्यास लगना और पानी न मिलना दुःख का विषय है। प्यास बुझना सुख का विषय है। आनन्द कलाकृति अथवा साहित्यिक कृति के माध्यम से प्राप्त होता है। जिस समय कविता को पढ़कर हमारा मन विशेष एकाग्र हो, भावमय हो उठता है; उस समय मन को स्थिरता के कारण जो निर्द्वन्द्वता प्राप्त होती है वह रसात्मक है। ऐसे रसात्मक कथन को जो पूरा अर्थ-संप्रेषित कर सकता है, हम वाक्य कहेंगे।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि जो वाक्य सरसता और मधुरता की निष्पत्ति करता हो और हमारे चित्त को आनन्दित कर विस्तार प्रदान करता हो, वह काव्य है। यहाँ पर यह रेखांकनीय है कि रसात्मकता से तो काव्य का वस्तु-पक्ष और वाक्य से काव्य का शिल्प-पक्ष ध्वनित होता है। इस प्रकार, आचार्य विश्वनाथ की उक्ति-

---

[5] साहित्यदर्पण, 1/.1

'वाक्यं रसात्मक काव्यम्'- को काव्य की पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों में विलियम वर्डसवर्थ ने काव्य की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में कविता की बड़ी समीचीन परिभाषा दी है। उन्होंने लिखा है कि 'कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उच्छलन है जो शान्ति के क्षणों में स्मृत मनोवेगों से उद्भूत होती है।'[6]

रेखांकनीय है कि वर्डसवर्थ ने अपनी उक्त कविताविषयक परिभाषा में अभिनव दृष्टि को अपनाते हुए यह बताया है कि काव्य के आधारभूत तत्व कवि के भाव, कवि की सृजनात्मकता तथा सहृदय के आनन्द हुआ करते हैं। वर्डसवर्थ की मान्यता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यमों से और भी प्रस्फुट बनाया जा सकता है :

- काव्य-रचना के लिए अनुभूतियों की प्रबलता अनिवार्य है, जब रचनाकार के चित्त में अनुभूतियों का आवेग आन्दोलित होने लगता है तब रचना का अविर्भाव होता है।
- काव्य-रचना के लिए चिन्तन की दशा (शान्ति के क्षणों में स्मृत मनोवेग) आवश्यक होती है।

---

[6] Poetry is the spontaneous overflow of Powerful feeling. It takes its Origin from emotions recollected in tranquillity. – Preface to second Edition Of Lyrical Ballads: W.Wordsworth.

उक्त बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाता है कि वर्डसवर्थ ने कविता के लिए कवि और उसके भावावेग को काव्य के प्रेरणास्त्रोत के रूप में अंगीकार किया है। उन्होंने यह संकेतित किया है जब कवि सुख-दुःखात्मक भावों को बड़ी आत्मीयता, गहनता और निर्वैयक्तिकता से भावित करता है, तब काव्योन्मेष होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपनी कविताविषयक परिभाषा में प्रकारन्तर से कुछ ऐसी ही धारणा व्यक्त की है। वे लिखते है, "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इस मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी दो शब्द-विधान करती आई है उसे कविता कहते है"[7]

जब मनुष्य जन्म और मृत्यु हानि और लाभ से उपरत होकर समत्व स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तब उसकी आत्मा मुक्त हो जाती है तथा जब मनुष्य सुख-दुःखात्मक और स्वत्व-परत्व की भावना से ऊपर उठ जाता है, तब उसका हृदय मुक्त हो जाता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार सुख-दुःख और अपने-पराये की भावना से पृथक् हो जाना ही रसदशा है और उनकी स्थापना भी यही है कि जो मानवीय क्षुद्रताओं, मानवीय संकोच से ऊपर उठाकर आनन्द की अनुभूति कराती है, वही कविता है। दूसरे शब्दों में इसे हम यों भी कह सकते हैं कि –

---

[7] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि:भाग-1, पृ. 97

- कविता का उद्देश्य आनन्द प्रदान कराना है,
- इस आनन्द के लिए वह मनुष्य को स्वार्थ की संकीर्णताओं से परे ले जाती है, तथा---
- परे ले जाने के लिए समत्व चेतना प्रदान कर रसदशा में अधिष्ठित करती है।

(2) शिल्प का स्वरूप

(क) शिल्प: निर्वचन और परिभाषा

प्रस्तुति के उपादन जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है, शिल्प–विधान कहलाता है। दूसरे शब्दों में इसे यों कह सकते हैं कि शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है। शिल्पविधि 'रचना कैसी है' यह उत्तर न देकर 'रचना ऐसी है' पर अधिक ज़ोर देती है।[8]

प्राचीनकाल में 'शिल्प' शब्द शूद्रों द्वारा निर्मित जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता था, लेकिन कालान्तर में इसका प्रयोग किसी भी प्रकार के कौशल्य के लिए किया जाने लगा। इस प्रकार, 'शिल्प' शब्द उपयोगी कौशल्य के साथ-साथ ललित कौशल का भी वाचक-व्यजंक हो गया। वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न तथा अपने प्रति लोक-व्याप्त हीन-भावना से बचने के लिए

---

[8] डॉ. कैलाश वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ. 19

शिल्पियों ने अपने लिए 'कलाकार' तथा अपने कर्म-कौशल के लिए 'कला' जैसे अभिधान ग्रहण कर लिये, क्योंकि उस समय की सामान्य लोकदृष्टि ही ऐसी थी कि शिल्प-कर्म करने वालों को उपेक्षित-अनादरणीय समझा जाता था, परन्तु आज लोकदृष्टि में गुणात्मक परिवर्तन दृष्टिगत होता है तथा कलाकलित व्यक्ति को अत्यन्त माननीय स्थान प्राप्त है।

अँगरेज़ी में शिल्प के लिए 'क्राफ़्ट'(Craft) या 'टैक्नीक'(Technique) शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'क्राफ़्ट' के पर्याय के रूप में शिल्प का अर्थ होगा - हस्तकौशल, दस्तकारी, कारीगरी, प्रवीणता, पटुता, कौशल, दक्षता, कला का अभिव्यक्ति कौशल, कला-दक्षता आदि।[9] अवधेय है कि शिल्प का मुख्य अर्थ हस्तकौशल या कारीगरी है जो कि प्राय: अभ्यास या श्रम–साधना से ही अधिगत होता है। साक्षी के रूप में डॉ. नगेन्द्र को प्रस्तुत किया जा सकता है। उनकी धारणा है कि शिल्प साधना की वस्तु है तथा उसके लिए परिष्कृत रुचि, कल्पना तथा प्रयत्न-साधना आदि गुणों की अपेक्षा होती है।[10] वस्तुतः, कल्पना की पुलक-पंखी उड़ान, अभ्यास की अनवरतता तथा श्रम-साधना की तीव्रता से ही शिल्प में निखार, निर्मलता तथा नवीनता आती है। हिन्दी में काव्य-

---

9 बृहत् अँग्रेज़ी-हिन्दी कोश: भाग-1 पृ. 431

10 डॉ. नगेन्द्र, विचार और विवेचन, पृ. 120

शिल्प के समानार्थी नाना शब्दों का प्रयोग होता है, यथा-काव्यकला अथवा कला, अभिव्यंजना, अभिव्यक्ति, रूप-विधान आदि। यद्यपि ये सभी शब्द शिल्प के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं, लेकिन सभी में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। कला वस्तु को सौन्दर्य-संपन्न बनाती है। उसका सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। अभिव्यंजना का अर्थ है। प्रतिपादन या निरूपण करना। यह निरूपणभाषा के द्वारा होता है।[11] अभिव्यंजना को ही कला मानते हैं क्योंकि अभिव्यंजना और कला- दोनों के ही मूल में सहजानुभूति है तथा सहजानुभूति सौन्दर्यमूला होती है। अभिव्यक्ति का शाब्दिक अर्थ है- प्रकाशन, स्पष्टीकरण, साक्षात्कार, प्रकट होना आदि। वैसे ही किसी वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो; जैसे – अन्धेरे में रखी चीज़ का उजाले में साफ़-साफ़ दीख पड़ना।[12] अभिव्यक्ति अगोचर, अस्पष्ट, अमूर्त तथा अप्रत्यक्ष का गोचर, स्पष्ट, मूर्त्त तथा प्रत्यक्ष स्वरूप है। कलाकार अपने चित्त में अन्तर्हित भावों को रंग, रेखा, तूलिका और शब्द के माध्यम से मूर्त्तरूप प्रदान करता है। काव्यकला में काव्य के रूप में से तात्पर्य है कि काव्य का बाहरी रूप जिसके द्वारा कवि या कि सर्जक-कलाकार की अनुभूति अभिव्यक्ति, होती है।

---

11 International Dictionary, p. 899

12 हिन्दी शब्दसागर: प्रथम बाग, 278

'शिल्प' के लिए प्रयुक्त समस्त अभिधानों पर विचार करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति अभिव्यंजना, कला रूप-विधान आदि समस्त नामों में 'शिल्प' अथवा 'काव्यशिल्प' ही ज़्यादा सार्थक और वस्तुसंगत है, क्योंकि शिल्प में कला और अभिव्यंजना जैसी किसी प्रकार की अस्पष्टता, गंभीरता, व्यापकता एवं विवाद नहीं है। शिल्प, सहज रूप से, काव्य अभिव्यक्ति के उपादानों का बोध कराता है। अस्तुः स्मरणीय है कि अनुभूति, कल्पना, स्मृति, विचार, सौन्दर्य आदि नाना वस्तुतत्वों की रसात्मक शब्द-संघटना ही रचना है। इन तत्वों का रमणीय शब्दांकन ही किसी कृति की उत्कृष्टता का परिचायक होता है। शिल्प-संयोजन किसी कलाकार की कला-निपुणता तथा विदग्धता पर आश्रित होती है। वास्तव में, रचनाकार व्यक्तिनिष्ठ और समाजनिष्ठ अनुभूतियों-स्थितियों को मूर्त्त करने के लिए जिन उपादानों का आश्रयण करता है, वही शिल्प है। रचना का यही आश्रय अमूर्त्त को मूर्त्तता तथा मूक को मुखरता प्रदान करता है जिससे कला सामाजिक वस्तु बनकर अपनी परिपूर्णावस्था में पहुँचकर रमणीय रचना के रूप में सामाजिक के भावन और प्रसादन का विषय बनती है और उसे रसानुभूति आनन्दानुभूति कराती है।

(ख) शिल्प के उपजीव्य तत्त्व

1. काव्यरूप

रचनाकार अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा के माध्यम से उन्हें जो निश्चित आकार-प्रकार प्रदान करता है, काव्याशास्त्रीय शब्दावली में यही काव्यरूप या काव्यविधा कहलाता है। काव्य के अंतरंग पक्ष (भावतत्त्व) को आत्मा तथा बहिरंग पक्ष (शिल्पतत्त्व) को शरीर माना गया है। जिस प्रकार आत्मतत्त्व को ही सर्वोपरि मानकर शरीरतत्त्व को अपेक्षाकृत स्थूल एवं गौण माना जाता है, उसी प्रकार शिल्पतत्त्व को भावतत्त्व की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण माना जाता है, जबकि वास्तविकता तो यह है कि दोनों का सापेक्षिक महत्व है, दोनों परस्परावलंबित हैं। जैसे देह आत्मा के बिना निरर्थक-निष्प्राण है, वैसे ही आत्मा भी देह के भाव में अरूप-अगोचर है। ठीक उसी प्रकार, कवि के भाव एवं विचार कितने ही कोमल-कठोर, ललित-उदात्त क्यों न हों, यदि वह अपने कथ्य के अनुकूल उसे उपयुक्त काव्यरूप प्रदान नहीं करता है तो वह कवि–कर्म में कदापि सफल नहीं हो सकता। अतएव, जिस प्रकार चेतनात्मा को मूर्त्तरूप देने के लिए 'हाड़मांस' के शरीर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए 'रूप' की आवश्यकता होती है। [13]

---

[13] डॉ. नजीर मुहम्मद, कबीर के काव्यरूप, पृ. 12

अध्युक्ति है 'यत्राकारो गुणास्तता:' - जहाँ आकार है, वहीं गुण है अर्थात् आकार से ही गुणों की प्रतीति होती है। परन्तु रूपाकार केवल बहिरंग-विधान का द्योतक नहीं है, वह तो सैदव रचना की आन्तरिक चेतना को भावित कराने वाला होता है या वस्तु-सापेक्ष होता है। सारांशतः ज्ञातव्य है कि काव्यरूप काव्य का वह बाहरी ढाँचा (Structure) होता है, जिससे होकर रचनाकार की कोई विशिष्ट अनुभूति अभिव्यंजित होती है।

भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत काव्य की समस्त रूपात्मक विधाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है - (1) दृश्यकाव्य, तथा (2) श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य के अन्तर्गत नाटक, प्रकरण, प्रहसन, एकांकी, रेडियो-रूपक आदि आते हैं। श्रव्यकाव्य को पद्य और गद्य दो वर्गों में विभक्त किया गया है। बन्ध की दृष्टि से पद्य के दो भेद किये गये हैं – प्रबन्धकाव्य तथा मुक्तककाव्य। प्रबन्धकाव्य के पुन: तीन भेद हो जाते हैं – महाकाव्य, खंण्डकाव्य तथा एकार्थ काव्य। चूँकि हमारा अध्ययन महाकाव्य (पदमावत) पर आश्रित है, अतः महाकाव्य के स्वरूप का अनुशीलन युक्तिसंगत प्रतीत होता है।